HindiTech
A Blind Double Peer Reviewed Bilingual Web-Research Journal

हिंदी वालों ने कोशकारों को मज़दूरों की श्रेणी में बैठा दिया है।

(एक समय में फिल्मी पत्रकार, संपादक एवं इस वर्ष कोश-निर्माण के लिए हिंदी अकादमी के शलाका सम्मान से सम्मानित कोशकार श्री. अरविंद कुमार ऐसे शब्द-सेवी हैं, जो सब कुछ छोड़कर शब्दों को ही अपनी संपत्ति समझते हैं और पत्नी कुसुम कुमार के साथ पूरा जीवन इसी को समर्पित कर दिया। प्रस्तुत है उनसे अरिमर्दन कुमार त्रिपाठी से बातचीत के प्रमुख अंश)

अरिमर्दन कुमार त्रिपाठी: पहली बार किसी कोशकार को साहित्यिक मंच से इस तरह का कोई पुरस्कार मिला है, इस रूप में स्वयं को पा कर कैसा महसूस कर रहे हैं?

अरविन्द कुमार: यह सही है कि समाज की आत्मा साहित्य के माध्यम से बोलती है। लेकिन मात्र साहित्य किसी भाषा की इतिश्री नहीं होता। भाषाई उपकरण भी उतने ही महत्त्वपूर्ण हैं। संसार भर में चाहे कश्यप हों, अमर सिंह हों, डाक्टर जानसन हों या पीटर मार्क रोजेट – कोशकार पूज्य माने गए हैं और सम्मानित किए गए हैं। परम उत्साही और हिंदी प्रेमी युवा बाबू श्याम सुंदर दास ने इंटर का छात्र होते हुए भी सन 1893 में मित्रों के सहयोग से बनारस में काशी नागरी प्रचारिणी सभा की नींव डाली। उस के लिए प्रधान संपादक के तौर पर 1907 से 1929 तक पूरी निष्ठा से हिंदी शब्द सागर कोश की रचना की। इस के प्रकाशन पर उन्हें कोशोत्सव स्मारक संग्रह नामक अभिनंदन ग्रंथ अर्पित किया गया। ब्रिटिश सरकार ने राय बहादुर की, हिंदी साहित्य सम्मेलन ने साहित्यवाचस्पति और काशी हिंदू विश्वविद्यालय ने डी॰लिट्॰ की सम्मानोपाधि प्रदान की। इसी प्रकार कोशकार और रामकथा के महान शोधक बेल्जियम मूल के फ़ादर कामिल बुल्के को 1974 में पद्म भूषण दिया गया। हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा में उनकी प्रतिमा है और उन के नाम पर छात्रावास भी। लेकिन आज हिंदी वालों ने साहित्यकारों, बुद्धिजीवियों और कोशकारों को मज़दूरों की श्रेणी में बैठा दिया है। स्वर्गीय डाक्टर हरदेव बाहरी और जीवित लेकिन अस्वस्थ डाक्टर बदरी नाथ कपूर जैसे कोशकार असम्मानित ही रहे हैं। हाँ, केंद्रीय हिंदी संस्थान डाक्टर बाहरी के नाम पर कुछ लोगों

को सम्मानित ज़रूर करता है। उन्हें सम्मान मिला हो या नहीं, हिंदी हमेशा डाक्टर बाहरी और बदरी नाथ कपूर जैसों की ऋणी रहेगी।

मुझे शलाका सम्मान मिलने की घटना एक ओर इन कोशकारों की उपेक्षा वाली स्थिति को दुरुस्त करने का प्रयास मालूम होती है, और दूसरी ओर इस तथ्य की स्वीकृति कि समांतर कोश सामान्य शब्दार्थ कोशों से कहीं आगे बढ़ कर आधुनिक भारत का पहला बृहद थिसारस है। इस ने थिसारसों की पुरातन भारतीय परंपरा को पुनर्जीवित किया है।

अरिमर्दन कुमार त्रिपाठी: जब एक सफल पत्रकार का जीवन जी ही रहे थे तो श्रम एवं समय साध्य माने जाने वाले कोशकर्म को आपने क्यों और कैसे चुना?

अरविन्द कुमार: कई लोग पूछते थे, और कई बार मैं स्वयं अपने से पूछता था कि मुझे किस काले कुत्ते ने काटा था कि लगी-लगाई, नौकरी और मुंबई का फ़िल्मी ग्लैमर छोड़ कर दिल्ली लौट आया। तमाम रिश्तेदार मुझे संसार का सब से बड़ा मूर्ख समझते थे। मैं बताना चाहता हूँ कि यह काला कुत्ता था: पीटर मार्क रोजेट का इंग्लिश थिसारस। वह 1852 में छपा था। उसे मैं ने पहली बार देखा था 1953 में। देखते ही मैं उस का दीवाना हो गया। तब मेरी उम्र थी कुल तेईस साल। उन दिनों भारत सरकार तरह-तरह के अनुदान दे कर डाक्टर रघुवीर और पंडित सुंदर लाल जैसों से कोश बनवा रही थी। तरह-तरह के शब्दावली निर्माण आयोग बनाए गए थे। जाने क्यों तब मुझे गहरा विश्वास था कि ऐसे ही प्रयासों में से निकल कर आएगा हिंदी का कोई थिसारस जो मुझ जैसे पत्रकार अपनी शब्द-शक्ति बढ़ाने के काम में लाएँगे। अब कहूँ तो यह एक निराधार आशा ही थी। उन आयोगों के गठन के पीछे थिसारस बनाने की योजना तो क्या कल्पना तक नहीं थी। फिर थिसारस बनता कैसे! और बनता भी तो किसी समिति के विद्वान थिसारस के एक-एक शीर्षक और उस के अधीन सम्मिलित किए जाने वाले एक एक शब्द पर महीनों बहस करते रहते! हर दिन अजीब चूँ-चूँ के मुरब्बे या मछली बाज़ार जैसा दृश्य देखने को मिलता रहता। मैं 1963 में मुंबई गया था माधुरी का समारंभ करने। दस साल बीतते- बीतते 1973 तक माधुरी हिंदी ही नहीं भारत की फ़िल्म पत्रकारिता में एकमात्र ग़ैर-ग्लैमरस पत्रिका होने पर भी सफलता के झंडे गाड़ चुकी थी। निजी तौर पर मेरे लिए यह सफलता बेमानी थी। एक अजीब निरर्थकता का बोध मन में गहरे व्यापता जा रहा था। इसी

मनोस्थिति में 1973 में 26-27 दिसंबर को मन में विचार आया कि हिंदी में थिसारस हो। उस रात पहली बार मेरे तब तक के दिशाहीन जीवन को मेरा अपना चुना लक्ष्य मिल गया। और लक्ष्य भी कैसा! हिंदी में थिसारस बनाना! शब्दों और अक्षरों की एक और मज़दूरी! अगली सुबह मलाबार हिल के हैंगिंग गार्डन में सैर करते समय हमें पूरी तरह पता था कि हम एक महा अभियान पर निकलना चाहते हैं। हिंदी को संसार की समृद्धतम भाषाओं के समकक्ष खड़ा करने की हिमाक़त पर तुले हैं। जो काम हिंदी में किसी ने पहले किया नहीं, वह करना है। वह कैसे किया जाना है, इस का कुछ पता नहीं था। अँधेरे में टटोल-टटोल कर बढ़ना था।

हम जानते थे कि हिंदी के अपनी तरह के पहले कोश के निर्माण जैसे महाप्रयास के लिए हमें अपने आप को पूरी तरह तैयार करना होगा। कई आयामों पर अपने को सक्षम करना होगा। आर्थिक आत्मनिर्भरता के प्रयास करने होंगे। विविध भाषाई संसाधन और उपकरण जुटाने होंगे। तरह-तरह के हिंदी इंग्लिश शब्द कोश हमारे पास होने चाहिए। शब्द-संकलन के लिए ऐसे कार्ड बनाने-बनवाने छपवाने होंगे, जो हमारी ज़रूरतों पर पूरे उतरें। आर्थिक आत्मनिर्भरता के लिए हम ने अपने आप को मई 1978 तक समय दिया। लगभग साढ़े चार साल। इस तैयारी का पूरा ब्योरा देने में काफ़ी जगह और समय चाहिए। इस लिए वह छोड़ देता हूँ। और यह भी छोड़ देता हूँ कि कैसे हमारी बचत नाकाफ़ी रही और योजना मूर्खतापूर्ण। हम ने तय किया था कि इस बीच हम मुंबई में अपने घर पर सुबह शाम शब्द संकलन का अभ्यास नियमित रूप से करेगे ताकि नौकरी छोड़ कर दिल्ली जाने से पहले हमें भरोसा हो जाए कि हम यह कर पाएँगे।

अरिमर्दन कुमार त्रिपाठी: आपके इस कर्म में एक तरफ तो लोक-भाषा के रूप को न छोड़ने जिद दिखती है तो दूसरी तरफ अँग्रेजी को भी बख़ूबी साधा गया है। क्या इस के लिए आप इस के शुरू में यानि 1973 में तैयार थे?

अरविन्द कुमार: यहाँ मुझे कई बातें साफ़ करनी पड़ेंगी। थिसारस क्या है, कैसे काम करता है, उस का उपयोक्ता किस तरह अपने वांछित शब्द समूह की तलाश करेगा – ये सारी बातें थिसारसकार को मन में विचारनी होती हैं। यह भी कि लक्ष्य भाषा की शब्दावली सामाजिक वर्गों के उपयोक्ताओं में किस तरह

भिन्न हो जाती है। रोज़ हम पानी पीते हैं, मेरे बचपन में जब बारात को जिमाते थे, तो मेहमानों को ठंडा पानी नहीं जल शीतल पिलाते थे। शुक्र ग्रह को कहीं सूक कहते हैं, कहीं बस तारा। एक तरफ़ पंडित लोग शुद्ध संस्कृत शब्दावली का प्रयोग करते हैं, तो दूसरी तरफ़ मुल्ला मौलवी और शायर अरबी फ़ारसी का, शहर के लोगोँ की बोली में इंग्लिश शब्दों की भरमार है। और नई तकनीकेँ अपने साथ नई शब्दावली ले कर आ रही हैं। मुझे शुरू से ही पता था कि मेरा कोश पूरे समाज के लिए होगा, गाँव के लिए भी, शहर के लिए भी, गली-कूचोँ के लिए भी, और विश्वविद्यालयोँ के लिए भी।

मैं जानता था कि भाषाई लचीलापन और विविधता हमारे कोश में न होगी तो कोई रात और दिन के शब्द नहीं खोज पाएगा। कोश में शब भी चाहिए होगा, रजनी भी, रैना भी, नाइट भी। दिवस भी, यौम भी, डे भी। अन्य संदर्भ में असरदार भी, प्रभावशाली भी, मार्मिक भी, भावोत्पादक भी। इस में भी ज्ञान मंडल का कोश आदर्श उपकरण सिद्ध हुआ। उस में हर तरह की शब्दावली थी। जिन विषयोँ की जानकारी उस में नहीं थी, उन के लिए हम ने पुस्तकों का आधार लिया। संगीत के लिए संगीत की, काव्य के लिए काव्य शास्त्र की, नाट्य परंपरा के लिए नाट्य शास्त्र की पुस्तकें। जब डाटा को द्विभाषी बनाने के लिए उस में इंग्लिश शब्दावली डालने का निर्णय किया तो मैं अच्छी तरह जानता था कि हमारा डाटा पूरी तरह भारतीय और हिंदी है। पहले तो सामाजिक-सांस्कृतिक-तकनीकी भारतीय शब्दों का अनुवाद करने की बजाए जस का तस रोमन लिपि में लिखने की नीति बनाई। आश्रम, ब्रह्मचर्य, ईश्वर, अन्नप्राशन, मक़तब, छठी जैसे सभी हम ने इंग्लिश में सम्मिलित किए। आख़िर हमारा कोश मूलतः भारतीयोँ के लिए था। हमारे बच्चोँ और बड़े बूढोँ को इंग्लिश कोश अपनी संस्कृति से जुड़े मिलने चाहिएँ।

हमारा हिंदी डाटा पूरी तरह भारतीय था। तो हमें पता था उस में सैकड़ोँ ऐसी अभिव्यक्तियाँ और आर्थी कोटियाँ छूट गई होंगी जो विदेशोँ में और इंग्लिश में होती हैं। हम ने वही कोशों की शरण में जाने की नीति अपनाई। इंग्लिश के वैब्स्टर और आक्सफ़र्ड कोशों का ए टू ज़ैड दोहन शुरू कर दिया। बड़े अनोखे शब्द मिले, उन के लिए अपने ढाँचे में जगहेँ बनानी पड़ीं। एक दो उदाहरण देना काफ़ी होगा। सोलहों हिंदू संस्कारों के बाद हम ने इसलामी संस्कार रखे थे, फिर ईसाई संस्कार भी। अब ईसाई संस्कारों में बपतिस्मा, कनफ़ैशन, यूकरिस्ट, मैट्रिमनी ज्योँ के त्योँ रखे। साथ में उन के लिए भारतीय और हिंदी शब्द भी जोड़े।

बात यहीं ख़त्म नहीं होती। जब परलोक गमन की शब्दावली आई तो वैतरणी तो हमारे पास थी ही। इंग्लिश कोशों में हमें वैतरणी के समकक्ष लीथी Lethe, और नरक के चारों ओर बहने वाली स्टिक्स Styx नदियों के नाम मिले। अगर स्वर्ग है, तो पास ही बाग़े अदन, ग्रीक स्वर्ग ओलिंपस भी डाला गया। यहूदी स्वर्ग ज़ायन zion/Sion, नार्वेजियाई स्वर्ग वैल्हैल Valhalla भी हमारे डाटा में आ गए। इसी आधार पर मैं दावा कर सकता हूँ कि दुनिया के अन्य सभी थिसारसों के मुक़ाबले हमारा डाटा सही मायनों में अंतरराष्ट्रीय है।

अरिमर्दन कुमार त्रिपाठी: हिंदी, बाजार और इसके समाज के अंत:संबंधों को आप कैसे देखते हैं?

अरविन्द कुमार: हिंदी की सब से बड़ी शक्ति है इस के बोलने वालों की संख्या। वही भाषा और वही शब्द जीवित रहते हैं, जो लिखे और बोले जा रहे हों। कम आबादी वाली भाषाएँ मरने के कगार पर हैं, और जल्द ही मर भी जाएँगी। हमें इस का अफ़सोस हो सकता है। हम इन की रक्षा के नाम पर इन की शब्दावली सुरक्षित कर सकते हैं। लेकिन म्यूज़ियम पीस के तौर पर ही। पर ये अधिक दिन बच नहीं पाएँगी। यही प्रकृति का क्रूर कर्म है। मारक प्रतिद्वंद्विता और सबलतम की विजय के अभाव में क्रमिक विकास संभव नहीं हुआ होता। जिस समाज के भीतर कहीं गहरे अपने को और अपनी भाषा को दुनिया में ऊपर ले जाने की चाहत हो, वही जीवित रहते और आगे बढ़ते हैं। यही उन की ताक़त होती है। विश्व विजय कर के दिखलाएँ – यह था झंडा ऊँचा रहे हमारा गीत का उद्घोष। जिस समाज में, भाषा में इतनी इच्छा हो, इतनी ऊर्जा, वह रुक नहीं सकती। रोकी भी नहीं जा सकती। और यह भाषा है हमारी हिंदी। जिसे भी अपना माल बेचना है उसे हमारे समाज की मानसिकता को संतुष्ट करना होगा। टीवी पर देखिए। पहले इंग्लिश के धारावाहिक दिखाए जाते थे। मनोहर श्याम जोशी हिंदी समाज का चित्रण करने वाले 'हम लोग' और 'ख़ानदान' फ़ीचर ले आए। रातोंरात सारा दृश्य बदल गया। जो फ़ीचर हमारे परिवारों की कसौटी पर खरे नहीं उतरे वे मर गए। बाज़ार की माँग और बाज़ारवाद को अलग कर के देखने की ज़रूरत है। बाज़ारवाद की ही बात करें तो यह भी सामाजिक परिवर्तन का माध्यम बन गया। गाँव-गाँव में उन सुविधाओं का संदेश पहुँचने लगा, जो सीरियलों में टीवी पर देखने को मिलती हैं। गाँव-गाँव ये सुविधाएँ पाने की इच्छा जागने लगी। वहाँ ये

पहुँचाने के लिए संसाधन जुटने लगे। लगातार दिखाए जाने वाले लाइव समाचारों ने अन्नाओं और रामदेवों को महामानव बना दिया।

अरिमर्दन कुमार त्रिपाठी: आप की दृष्टि में कोशों की समाज के लिए क्या उपयोगिता है?

अरविन्द कुमार: आम आदमी भाषा को बनाता है। शब्द रोज़ाना की ज़िंदगी में बनते बिगड़ते सुधरते हैं। यह जो बिगड़ने की बात है—यह विद्वानों का नज़रिया है। संस्कृत भाषा के शब्द बिगड़ने (अपभ्रंश होने) से ही हिंदी के बहुत सारे शब्द बने हैं। मैं इसे ज़िंदगी की सान पर शब्दों का घिसना, सँवरना, सुधरना मानता हूँ। कोशकार शब्दों को प्रामाणिकता प्रदान करते हैं। लेकिन समाज फिर शब्दों को बदल देता है। फिर नए कोश बनते हैं। कोश न हों तो समाज अपंग-सा हो जाता है। थिसारस शब्दार्थ कोश से अलग तरह की चीज़ होता है। शब्द कोश शब्द को अर्थ देते हैं। थिसारस अर्थ को शब्द देता है। इस के लिए वह शब्दों का संकलन मात्र करता है। किसी एक को दूसरे शब्द से बेहतर नहीं कहता। उपयोग करने वाले पर छोड़ देता है कि वह किस शब्द को काम में लाए। यहाँ एक बात और। हिंदी पढ़े-लिखे लोग शब्दकोश देखने के आदी नहीं हैं। अधिकांश के पास कोश होता ही नहीं। समांतर कोश और द पेंगुइन इंग्लिश-हिंदी/हिंदी-इंग्लिश थिसारस ऐंड डिक्शनरी होना तो बहुत दूर की बात है। कितने अध्यापक और प्राध्यापक हैं, जिन्हों ने कभी किसी शब्दकोश से काम लिया है? बहुत ही कम हिंदी प्रकाशकों का कोई संपादन विभाग होता है, जिनके पास संदर्भ-ग्रंथ और शब्दकोश हैं। कई बार उन के संपादकों के हिज्जे तक सही नहीं होते।

अरिमर्दन कुमार त्रिपाठी: हिंदी और इसकी बोलियों के संबंधों को किस रूप में देखा जाना चाहिए?

अरविन्द कुमार: हिंदी की बोलियाँ हम किसे कहेंगे? भोजपुरी को, ब्रजभाषा को, मालवी को, गढ़वाली को? ये तो अपने आप में स्वतंत्र भाषाएँ हैं, इन की अपनी शब्दावली है, अपना व्याकरण। पटना का भैया जोधपुर में परदेसी-सा बन जाता है। तब वह संपर्क के लिए भोजपुरी में नहीं हिंदी में बोलता है। मैं इन सब भाषाओं के विकास का हामी हूँ।

अरिमर्दन कुमार त्रिपाठी: वर्तमान समय में आप अपने जीवन का मूल्यांकन करके स्वयं को कहाँ पा रहे हैं और एक पत्रकार और कोशकार में से स्वयं किस रूप में देखते हैं?

अरविन्द कुमार: मैं क्या था, क्या बन गया। पता नहीं। पत्रकार तो अब नहीं ही रहा। लेखक कभी अच्छा नहीं बन पाया। कोशकार? वह भी शायद आधा-अधूरा ही हूँ। पूरा कोशकार महाविद्वान होना चाहिए। वह मैं नहीं हूँ। बस, एक संतोष है कि रोजेट जैसे वही लोग थिसारस बनाते रहे हैं जिन की शब्दावली आधी-अधूरी थी, और इसी लिए शब्दों की सूचियाँ बनाने में जुट गए। अपनी बात करूँ तो कहूँगा कि जिस काम को होना होता है, वह अपने लिए किसी व्यक्ति को अपना वाहन बना लेता है, और फिर अपना पूरा होना सुनिश्चित करने के लिए उसे हाँकता-कोंचता रहता है। इतना ही नहीं एक ओर तो अपने को बचाता है, और दूसरी ओर अपनी रक्षा के लिए हर तरह के अनिष्ट से अपने वाहन की रक्षा भी करता रहता है। अनेक घोरतम परिस्थितियों में मेरे काम ने मेरी रक्षा की है।